चिट्ठियाँ

रोहिणी अग्रवाल

हिन्दी ADDA

चिट्ठियाँ

20.7.2001

माननीय महोदया,

लंबे इंतजार के बाद आज आपकी चिट्ठी क्या मिली, मुझ मुरझाई बेल की जड़ों को जैसे अमृत से सींच दिया हो किसी ने। धन्यवाद! सच कहूँ तो अब तक जवाब की उम्मीद खो बैठी थी। भूल गई थी कि मुझ जैसी हजारों-हजार अभागनों के खत रोज आप तक पहुँचते होंगे। कितना पढ़ें और कितनों को जवाब दें। आपने मुझे जवाब लायक चुना, आभारी हूँ।

स्थानीय नारी निकेतन में जगह पाने की सलाह और किसी भी किस्म की अड़चन आने पर सिफारशी पत्र देने की पेशकश के लिए भी मैं आपकी आभारी हूँ। आप लोगों के कन्सर्न और सहायता के भरोसे ही हम दुखिनें आशा की डोरी थाम सकती हैं। लेकिन मैं समझ नहीं पाई, नारी निकेतन का विकल्प आपने मेरे लिए क्यों चुना? क्या इसलिए कि मैंने हॉस्टल में रहने की ख्वाहिश जताई है? लेकिन उसकी तो कई वजहें हैं न मेरे पास। हॉस्टलों में भले घरों की लाज, शालीनता और गरिमा महफूज रहती है, जस की तस। उघड़ कर चिंदिया-चिंदिया नहीं होती, नारी निकेतनों की तरह कि नंगे चेहरे को ढाँपने के लिए अपनी ही हथेलियाँ मयस्सर न हों। बेसहारा होने का मतलब बेछत होना तो नहीं होता न! सिर छुपाने को एक अदद छत तो है ही मेरे पास। लेकिन औरत को सिर के अलावा और भी बहुत कुछ छुपाना होता है, इसे आप जैसी अनुभवी महिला को बतानेवाली भला मैं कौन होती हूँ। मैं जिसने जीवन के कुल साढ़े अट्ठारह वसंत/पतझड़ ही देखे हैं।

कहीं ऐसा तो नहीं कि आपने मेरी पूरी चिट्ठी ही न पढ़ी हो? न न, भला ऐसा कैसे हो सकता है? जरूर मैं ही ठीक तरह से अपनी बात नहीं कह पाई हूँगी। अपने को ले कर सदा से ही मितभाषी रही हूँ न। माँ-बाप की परेशानियों को देखते हुए बचपन से ही अपने को समेट सिकोड़ कर रखने की आदत। बस चलता तो शायद अपने वजूद को ही अदृश्य कर लेती। लेकिन कल्पना और हकीकत के बीच गहरी खाई मौजूद रहती है। न पाटी जा सकनेवाली खाई... अच्छा, क्या आपको नहीं लगता कि बिल्कुल निर्जन द्वीप पर निपट अकेले खड़े हैं आप। खाली हाथ! खौफ और सन्नाटे के साथ! चारों ओर पानी... और दूर पानी के पार कोई सतरंगी महकती-लहकती दुनिया... आपके इंतजार में... बाँहें अकुलाती हैं... भीतर उत्साह, ऊर्जा और उमंग का समंदर ठाठें मार कर बुलाता है - आओ! चलें उस पार! ...काश! एक कश्ती ही होती! छोटी-सी!

और दो पतवार! ...या लकड़ी का लट्ठा ही... बहुत आसान नहीं हो जाता होगा तब सात समंदरों को भी पार कर लेना! फिर खाइयाँ पाटने में ऐसी क्या मुश्किल...!

'शेखचिल्ली**!**' पप्पा मेरी नाक झिंझोड़ देते थे जोर से।

'क्यों' मैं अनखा जाती थी, 'सफर शुरू करने के लिए एक जोड़ी पैर और अकूत हौसले के अलावा और क्या चाहिए इंसान को?' मैं प्रश्नभरी निगाहों से उन्हें देख कर इठला जाती, 'मेरे पास सब कुछ है। ढेर सारा।' और अनायास मेरी दोनों बाँहें फैल जातीं, असीम विस्तार के प्रस्तावन में।

पप्पा मगजमारी नहीं करते। वे सामान से ठुंसा झोला साइकिल पर लादने लगते, 'और चाहिए ठोस पुख्ता जमीन।'

मैं हँस देती, माथे पर हाथ मार कर, 'जमीन तो सबके पास होती है, बुद्धूराम!'

...शायद बहकने लगी हूँ। पहली चिट्ठी में भी जरूर बहकी रही हूँगी। इसलिए तो अपनी फरियाद आप तक साफ-साफ नहीं पहुँचा पाई। इजाजत दें तो फिर से अपनी बात दोहरा दूँ?

मैं, नयनतारा, बी.सी.ए. (बैचलर इन कंप्यूटर एप्लीकेशन) फर्स्ट इयर की छात्रा हूँ। अभी डेढ़ महीने पहले दूसरे सेमेस्टर का इम्तिहान दिया था। पर्चे बहुत बढ़िया हुए। आखिरी पर्चा दे नहीं पाई थी। वह हादसा न हुआ होता (पिछली चिट्ठी में जिक्र किया था न**!**) तो विश्वविद्यालय में दूसरा-तीसरा स्थान जरूर आता। बारहवीं की परीक्षा में मेरे सत्तासी प्रतिशत अंक आए थे। इंजीनियरिंग...! नहीं, ऐसे ऐयाश सपने नहीं पालती मैं जिनके टूटने से काँच की किरचों से बिंधा मन ताउम्र नासूर की तरह टीसता रहे। और कहीं उस ऐयाश सपने की झलक भर पप्पा को मिल जाती तो अपनी तमाम गरीबी बेच कर भी क्या उसे दो पल को मेरी आँख में सजा पाते? पप्पा... मेरे प्यारे पप्पा... न! दुनिया तो जाने कितनी नियामतों से भरी पड़ी है! किस-किस को देख कर ललचाए आदमी? किस-किस को पाने के लिए तड़पे? ...लेकिन कंप्यूटर साइंस में बैचलर डिग्री ले कर जब अपने पैरों पर खड़ी हो जाऊँगी, तब जरूर सपने साकार करने

की कोशिश करूँगी। राह बदल लेने से सपने खत्म नहीं होते। वे साथ होते हैं, इसलिए तो नई राहें निकल आती हैं...।

समस्या यह है कि उस हादसे के बाद माँ बहुत डर गई है। सात-सात तालों में बंद रख कर वह जल्द से जल्द मेरे हाथ पीले कर निश्चिंत हो जाना चाहती है। ब्याह दी गई तो मैं बरबाद हो जाऊँगी। मैं भविष्यहीन हो कर जीना नहीं चाहती। मेरे सपने... अपने पैरों पर खड़े हो कर आसमान से मनचाहा भविष्य तोड़ लाने के हौसले... माँ मुझे पढ़ाना नहीं चाहती और मैं हर हाल में पढ़ना चाहती हूँ। आपसे हाथ जोड़ कर बिनती है कि आप मेरी पढ़ाई और हॉस्टल का खर्चा उठा लें। नौकरी लगने पर सारा पैसा ब्याज समेत लौटा दूँगी। चाहें तो कानूनी लिखत-पढ़त भी कर लें। मैं बालिग हूँ, इसलिए घरवालों की मर्जी के खिलाफ अपने भविष्य के लिए कोई भी फैसला लेने को कानूनन स्वतंत्र हूँ। जरूरी कार्रवाई के लिए जन्म प्रमाण पत्र, बारहवीं की अंक तालिका और कंप्यूटर इंस्टीच्यूट का चरित्र प्रमाण पत्र साथ लगा रही हूँ। मेरी छमाही फीस छह हजार रुपए है। हॉस्टल के खर्चे के बाबत अभी पता नहीं किया। फीस मुझे न दे कर आप सीधे प्रिंसिपल के नाम भी बैंक ड्राफ्ट भेज सकती हैं।

आशा है आप मुझे निराश नहीं करेंगी। महिला सशक्तीकरण वर्ष में कमजोर जरूरतमंद महिलाओं को समय पर मदद पहुँचा कर सशक्त करने के जिस महायज्ञ में आप लगी हैं, उसमें मेरे नाम की एक आहुति मेरे जीवन को कितना सँवार देगी, मैं बता नहीं सकती।

पत्र की प्रतीक्षा में,

अभागन

नयनतारा

26.7.2001

माननीय महोदया,

आज ही आपकी चिट्ठी मिली। धन्यवाद! आप उस हादसे के बारे में तफसील से जानना चाहती हैं जिसने मेरी जिंदगी को इस कदर झकझोर दिया कि माँ अपने हाथों पाताल में फेंकने को मजबूर हो गई मुझे। हादसे कह कर नहीं आते। भूचाल की तरह क्षणांश के लिए आते हैं, लेकिन उनकी धमक दहशत बन कर बरसों जिंदगी को वीरान किए चलती है। यूँ भी रंग-रूप अलग होने पर हादसे कमोबेश सब एक ही होते हैं। एक-सी पीड़ा! एक सी यंत्राणा! शारीरिक! मानसिक! कुछ टूटता है जो दुबारा कभी नहीं बनता। हाथ-पैर-दाँत-टाँग-गुर्दे-फेफड़े... शरीर के किसी भी अंग की तरह! बेशक आज साईंस की मदद से उन्हें रिप्लेस किया जा रहा है, लेकिन उनका होना मूल के टूट जाने को खारिज तो नहीं कर सकता न!

जिन सामाजिक-मानसिक-संस्कारग्रस्त दबावों में माँ निरंतर जी रही है, उनमें अपने जीवित होने को ले कर ही मैं शर्मसार हूँ। फिर भी जीवित हूँ क्योंकि विश्वास है पढ़ कर अच्छी नौकरी पाने के बाद माँ को वो तमाम आराम दे सकूँगी जिन पर किसी भी नागरिक का मौलिक अधिकार बनता है। आर्थिक-सामाजिक-मानसिक-भावनात्मक आराम! ...हमारे परिवार की आर्थिक हालत दिनोंदिन बिगड़ती जा रही है। पहले पत्र में बताया था, पप्पा की टी.बी. से मृत्यु के बाद हम बेसहारा हो गए थे। चाचा-मामा की ओर से किसी की कोई मदद नहीं। हमें गिला भी नहीं। माँ कहती है, पप्पा की जगह चाचा या मामा गुजरे होते तो तमाम संवेदना के बावजूद हम उनके परिवार को कंधा नहीं लगा सकते थे। हमारे अपने बिखर जाने का डर बना रहता। पप्पा की परचून की छोटी-सी दुकान थी। दुकान के बाहर तख्त बिछा कर वे सब्जियाँ भी सजा देते थे। जीने लायक गुजारा हो जाता था। इतना कि हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी में एक कमरे-रसोई का मकान किस्तों पर खरीदने का हौसला कर लिया था। अब तो किस्तें भी खत्म होनेवाली हैं। बस, सोलह महीने और। हाँ, आखिरी दिनों में पप्पा ने मकान के पिछवाड़े में एक छोटा-सा कमरा और बनवा लिया था। मेरी पढ़ाई के लिए। पप्पा को मुझ से बहुत उम्मीदें थीं। लेकिन उम्मीदों का क्या है। कोई भी पाल ले। न खिलाना, न पिलाना, उड़े रहो संग-संग। वो तो आँख तब खुलती है जब खूब ऊँचे ले जा कर उम्मीदें हाथ छोड़ नीचे धकेल देती हैं। गिरो... मरो... उन्हें तो ताली बजा कर तमाशा देखने से मतलब है, बस!

...मैं फिर बहकने लगी। होता है। अंतर्मुखी व्यक्ति जब चुप्पी तोड़ता है तो सैलाब बन कर बह जाता है। फिर, जब आप जैसे दयालु लोग हमारे ही दुख-दर्द सुनने-बाँटने के लिए तत्पर हों।

मेरी माँ बहुत हौसलेवाली औरत है। निवार की फोल्डिंग चारपाइयाँ और बेंत की कुर्सियाँ बुनने में उसकी कोई सानी नहीं। आसपास के मुहल्ले-बस्तियों में घूम-घूम कर वह अपने लिए हमेशा काम ढूँढ़ती रही है। लेकिन आजकल उसे फुर्सत नहीं। वह सुबह-सवेरे सब्जी मंडी जा कर ताजा सब्जियाँ खरीदती है। कोई चार किलोमीटर है सब्जी मंडी। गर्मी हो, सर्दी हो, पैदल जाएगी। पैसा बचाने। लेकिन कहती है, सैर हो जाएगी। कसरत! अब बताओ, कसरत के चोंचले हमारे जैसों को भी करने पड़ेंगे जिन्हें... नहीं, अब नहीं भटकूँगी। मोलभाव करके साढ़े नौ-दस बजे के करीब थ्री व्हीलर पर सब्जियाँ लदवा कर लौटती है तो मुँह बासी तुरई-सा पिचक कर काला हो जाता है। सुबह की भूखी-प्यासी! केवल एक प्याला चाय! फिर सब्जियाँ धोना। लगाना। बीच-बीच में ग्राहकों को भुगताना। छुट्टीवाले दिन गुड्डू और आरती (मेरे छोटे भाई-बहन - आयु क्रमशः दस और तेरह बरस) की वजह से माँ को कुछ राहत मिल जाती है। पर कितनी देर! वह वहीं दुकान के सामने कुर्सियों की भराई करने लगती है। पल भर को जो कभी आराम किया हो। मुझे डर लगता है। एक तो टी.बी. जैसी बीमारीवाला घर। दूसरे, दिन-रात की मेहनत। खाने को पौष्टिक भोजन नहीं। कल को कुछ हो गया तो...!

माँ टूट गई है। मेरी वजह से। वह अपने को पापिन और अपराधिन समझती है। मैं बहुत समझाती हूँ, फिर भी। अगर आप उन्हें चिट्ठी लिख कर मुझे पढाने और हॉस्टल का खर्चा उठाने की बात लिख देंगी तो शायद उन्हें तसल्ली मिल जाए। हम नाचीज आप जैसे बड़े लोगों का मुँह देख कर ही तो जीते हैं। चिट्ठी लिखेंगी न, माँ के नाम!

अभागन

नयनतारा

पुनश्च: माँ चिट्ठी पढ़ नहीं पाएगी, लेकिन सुन कर समझ जाएगी। वो तो वक्त की मार है, वरना माँ किसी से कम नहीं।

नयनतारा

28.7.2001

माननीय महोदया,

आज ही मेरे दूसरे सेमेस्टर का परीक्षा परिणाम घोषित हुआ है। आखिरी पर्चे में रीअपीयर आई है। वह मैं दे नहीं पाई थी। शेष सबमें अट्ठासी प्रतिशत अंक बनते हैं। मार्कशीट की फोटो कॉपी भिजवा रही हूँ। आप शीघ्र ही हॉस्टल खर्चे के साथ फीस भेजने की कानूनी औपचारिकताएँ पूरी कर लें तो मैं बेफिक्र हूँगी। तीन हफ्ते के भीतर-भीतर 21 अगस्त तक दाखिला रिन्यू करा कर तीसरे सेमेस्टर की फीस जमा करानी है।

माँ मेरे हाथ पीले कर देने को आमादा है। हालाँकि किसी को उस हादसे के बारे में ज्यादा मालूम नहीं। कुछ कानाफूसियाँ जरूर होती हैं, पीठ पीछे। पर माँ को लगता है सब उस पर हँस रहे हैं। मखौल उड़ा रहे हैं। उसे यह भी डर है कि मुझ पर कोई कभी भी झपट सकता है। जब ठीक अपने ही घर में... माँ का मन दुकान चलाने में नहीं लगता। वह हर घड़ी मुझे अपनी नजरों में बांधे रखना चाहती है। हाँ, हमने वो कमरा खाली करवा लिया है जिसे पप्पा ने मेरी पढ़ाई के लिए बनवाया था, लेकिन जिसे हमने उनकी मौत के बाद किराए पर उठा दिया था। हर महीने मिलनेवाले पाँच सौ रुपयों से कितनी मदद हो जाती थी, अब पता चलने लगा है। सिर के नीचे कुछ न हो, तभी तकिए की अहमियत समझ आती है।

फीस भेज देंगी न? और माँ को चिट्ठी भी। वरना सलीब पर टाँग दी जाऊँगी मैं।

अभागन नयनतारा

31.7.2001

माननीय महोदया,

मुझे खुशी है कि मेरे केस पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के लिए अगले महीने की तीन तारीख को आपने विशेष मीटिंग बुलाई है। सच कहूँ तो चिट्ठी पढ़ते ही लगा, मेरे पैरों के नीचे पुख्ता जमीन है। न सही समतल सपाट। ऊबड़-खाबड़ पर भी चल लूँगी। ताउम्र चलती ही रही हूँ। रात को सपना भी देखा कि ऊबड़-खाबड़ कँकरीली जमीन पर दौड़ते-दौड़ते मेरे पैर लहूलुहान हो गए है। धप... धप... मैं आगे बढ़ रही हूँ... और पैरों की लाल छाप कभी बिंदु बन कर, कभी लकीर बन कर पथरीली जमीन पर बिछ रही है। मैं बेखबर भाग रही हूँ - सरपट। ...लाल फीते को चीर कर। ...तभी बहुत से नरम हाथ मुझे थाम लेते हैं। चारों तरफ तालियाँ... सीटियाँ... मेराथन में पहला स्थान पाने के लिए कु. नयनतारा को स्वर्ण पदक़... मैडम, विश्वास कीजिए, मैं लंबी रेस का घोड़ा हूँ। आप मुझ पर दाँव लगाइए, निराश नहीं होंगी। नौकरी लगने पर ब्याज समेत पाई-पाई चुका दूँगी। पढ़ने का मौका मिला तो नौकरियाँ जरूर मेरे कदम चूमेंगी। काबलियत की कद्र हर अंधेर नगरी में भी होती रही है।

हादसे का बयान करने में मुझे कतई कोई डर नहीं। चुप रही हूँ तो इसलिए कि लाज नाम की एक चीज हुआ करती है जो मखमल न मिलने पर बदन को चिथड़ों में लपेट कर खुद को महफूज रखती है। डर सिर्फ निर्वसन होने का है। बेशक नंग बड़ा भगवान से। पर मैं तो भगवान भी नहीं बनना चाहती। चाहती हूँ पढ़ाई पूरी करके नौकरी पाना, माँ और छोटे भाई-बहन को वह सब देना जो पैसे की कमी ने एक-एक कर हम से छीन लिया है। चाहती हूँ समाज में सम्मानजनक जगह बना कर माँ को उस गहरे दंश से मुक्त कराना जिसका होना मेरे 'होने' की वजह से ही था।

मैं नहीं जानती खबर और हादसे के अलावा बलात्कार में दिलचस्पी लेने लायक और भी कुछ है। इसलिए समझ नहीं पर रही क्यों डीटेल्स पर आप लोग इतना जोर दे रहे हैं? कैसी औपचारिकताएँ? कैसी तकनीकी जरूरतें? क्या मीटिंग में आप लोग अपनी-अपनी आँखों पर कैमरे लगा कर मुझे फड़फड़ाते देखना चाहते हैं कि कैसे वो दरिंदा अपने एक दोस्त के साथ दबे पाँव हमारे कमरे में घुसा... वो दरिंदा... जिसे भलामानुस समझ कर हमने किराएदार बनाया था... जो स्कूल मास्टर था... मेरे बाप की उम्र का... अपने दोस्त के साथ, जब मैं घर में अकेली थी... अकेली और बेपरवाह...

आखिरी पेपर की तैयारी में मशगूल... गली में दूर तक जून की चिलचिलाती धूप और पुराने सैकिंडहैंड कूलरों का खड़खड़ाहट भरा तीखा शोर... आरती-गुड्डू मुझे डिस्टर्ब न करें, इसलिए माँ के साथ दुकान पर। तब... तब आया था वो दरिंदा... अपने दोस्त के साथ... देख रहे हैं न आप! मुझे लुटते-पिटते-नुचते! ...एक अदद सुकून से सराबोर होते - थैंक गॉड, मेरी बेटी के साथ नहीं हुआ ऐसा! थैंक गॉड, हमारी बेटियों की तरफ आँख उठाने की जुर्रत नहीं करता कोई! ...जी हाँ, मैं नहीं हूँ बड़े घर की बेटी। इसलिए पिछले पौने दो महीने से बार-बार हाथ जोड़ कर एक ही बिनती कर रही हूँ, मेरी माँ - अनपढ़ जाहिल गँवार माँ - बेहद डर गई है। समाज से, मुझ से, अपने आप से। मेरी हिफाजत के लिए वह मेरे गले में ब्याह का पट्टा डाल देना चाहती है। कुछ गलत भी नहीं सोच रही वो। अभी भेद ढाँप रखा है उसने। जिस दिन खुल गया, बाकी परिवार को भी निगल जाएगा। आरती का ब्याह... गुड्डू का भविष्य... परिवार की लाज...

इसलिए हाथ जोड़ कर बार-बार फरियाद कर रही हूँ - मेरी आर्थिक मदद कर दीजिए, प्लीज! वक्त पर बारिश की हल्की सी झड़ी भी खेतों में सोना उगा देती है। मैं पढ़ना चाहती हूँ। पढ़ने में तेज हूँ। जरूर अच्छी नौकरी पा लूँगी। सूद समेत एक-एक पैसा चुका दूँगी। सवाल मेरी जिंदगी सँवरने का नहीं। मेरे साथ तीन और जिंदगियों के सँवरने का भी है। वरना... आप जानती हैं... एक मौत... कभी-कभी पूरे खानदान को ही मिटा डालती है।

शायद बरस गई हूँ आज। दिल घटाटोप बदलियों का भार बहुत देर तक सँभाल नहीं पाता।

चिट्ठी की राह में

अभागन

नयनतारा

पुनश्च : माइग्रेशन के लिए आवेदन कर दिया है। पास के दो शहरों के कंप्यूटर इंस्टीच्यूट्स के प्रोस्पैक्टस भी मँगवा लिए हैं। इसी विश्वविद्यालय से संबद्ध होने के कारण माइग्रेशन में कोई कठिनाई नहीं आएगी। पहली बार हॉस्टल का खर्च भेज

दीजिए। फिर तो जैसे-तैसे मैं खुद ही जुगाड़ कर लूँगी। कुछ ट्यूशन और कपड़े सी कर। माँ की नजर से दूर रहूँगी तो शायद उसके जख्म भरने लगें। मेरे जख्म... पता नहीं। वो दरिंदा उन लम्हों के साथ पल भर को भी आँख से ओझल नहीं होता।

नयनतारा

5.8.2001

माननीय महोदया,

आज के अखबार में बलात्कृत लड़कियों की दशा पर संस्था की रिपोर्ट और विशेष लेख पढ़ा। जिस लाज को माँ जतनपूर्वक चिथड़ों से ढाँपे हुए थी, उसे आपने किस होशियारी से उघाड़ दिया है! बधाई! नहीं, व्यंग्य नहीं। शुक्रगुजार हूँ। मुझ नयनतारा को वहाँ आपने दीपा बना दिया है। लेकिन नाम बदल देने से पेड़ और खुशबुएँ, गलियाँ और संस्कृतियाँ, मकान और अहाते तो नहीं बदलते न! वे तो अपने उसी हुलिए, उसी कद-काठी के साथ वही पहचान बनाए शान से जिए चलते हैं। फिर इंसान तो इन सबसे अलग है... बड़ा और विशिष्ट... अँगूठे की ओट में छुप सकता है पूरा का पूरा.. लेकिन उसकी नाक... शिकारी कुत्ते की तरह अनकहा सब कुछ सूँघ लेती है। ...अब तो सब कुछ दिन के उजाले की तरह साफ हो गया है। कानाफूसियाँ फिकरों में बदलने लगी हैं। फिकरे हिकारत में। आरती पर भी शक की निगाहें...। मैं तो मानो हूँ ही अलिफ नंगी। किस-किस अंग पर दाँतों-नाखूनों के कितने गहरे-नुकीले दाग बने होंगे... इन अनुमानों के साथ सबका मनोरंजन करनेवाली सार्वजनिक देह! लेकिन मैं अपने दर्द की बात क्यों करूँ? दर्द को तमाशा बना कर मजमा जोड़ लेंगी न आप!

नयनतारा

11.8.2001

माननीय महोदया,

माँ गुमसुम रहने लगी है। जब बौखलाती थी तो माँ-सी अपनी-अपनी लगती थी। अब तो जैसे... जाने दो। दुकान पर बैठना छोड़ दिन-रात रिश्तेदारियों में चक्कर लगाती है।

लड़के की तलाश में। कोई भी लड़का। कैसा भी। कमाऊ हो या न। दागल लड़की के लिए साबुत और साफ लड़के नहीं देखे जाते। मुझे नहीं लगता किसी भी कीमत पर वह मुझे हॉस्टल जाने की इजाजत देगी। लेकिन आप फीस भेज दीजिए। मैं बिना बताए निकल जाऊँगी। बालिग हूँ। इसलिए घरवालों की मर्जी के खिलाफ अपनी बेहतरी के लिए निर्णय लेने को कानूनन स्वतंत्र हूँ। एक बार तूफान तो आएगा। बहुत कुछ तहस-नहस भी होगा। लेकिन बाद में सब ठीक हो जाएगा। मेरी नौकरी लगते ही। तूफान अधिक देर तक बने नहीं रहते।

मैंने अपना एडमिशन फार्म एपटेक कॉलेज, सोनीपत में जमा करा दिया है। लड़कियों का हॉस्टल भी है वहाँ। बहुत बड़ा तो नहीं, लेकिन घर की गरिमा और गरमाहट तो होगी ही। फीस जमा कराने की आखिरी तारीख 21 अगस्त है। हॉस्टल फीस जमा कराने की दस सितंबर। आप सीधे प्रिंसिपल के नाम छह हजार रुपए का बैंक ड्राफ्ट भिजवा दें तो आभारी हूँगी। यकीन मानिए, मेरा रोम-रोम आपके उपकार से ताउम्र बँधा रहेगा। समझ लीजिए आपकी अपनी बेटी हूँ। नहीं, बेटी होने की जुर्रत नहीं करूँगी। आपका अपना रुतबा और नाम है। समझ लीजिए, ऑफिस के पर्दे बदल लिए... या... खुश हो कर स्टाफ को बढ़िया-सा डिनर दे दिया। बस, इतना-सा ही तो। मेरी जिंदगी सँवर जाएगी। एक साथ चार-चार जिंदगियाँ सँवारने का पुन्न! लेकिन धर्म और परमात्मा की बातें कहीं हम जैसे कमजोर बेसहारा लोग ही तो नहीं करते?

अभागन

नयनतारा

पुनश्च : माँ को चिट्ठी लिख कर जरूर समझा दीजिए, ऐसे हादसे होते रहते हैं। फ्लू और जुकाम समझ कर इन्हें भुला दिया जाना चाहिए। ज्यादा ही दिल से लगाना हो तो घुटने के फ्रैक्चर जितना गंभीर। बस! मौत का फरमान बन कर हँसती-खेलती जिंदगी को चलती-फिरती लाश बना दे, ऐसा भी क्या पागलपना!

माँ को समझाइए न, मैं आज भी उतनी ही पवित्र हूँ! और बेकसूर! फिर सजा मुझे क्यों?

नयनतारा

17.8.2001

माननीय महोदया,

31 जुलाई के बाद आपकी कोई चिट्ठी नहीं मिली। डाक की गड़बड़ी के ख्याल से पिछले कई दिनों से हैड पोस्ट ऑफिस जा कर अपनी कॉलोनी की सारी डाक छाँट आती हूँ। क्या सचमुच आपने कोई चिट्ठी नहीं लिखी?

कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरी चिट्ठियाँ ही आपको न मिल रही हों? या मिलती भी हों तो किसी कारणवश आप जवाब न दे पा रही हों? कहीं ऐसा तो नहीं कि तमाम सद्भावनाओं के बावजूद आप चाह कर भी मेरी मदद न कर सकती हों क्योंकि आपकी संस्था के कोड में किसी दुखियारी की ऐसी कोई डाइरेक्ट आर्थिक मदद की लिखित अनुमति नहीं? लेकिन नियम तो बाधाओं का मुकाबला करने के लिए बनाए और बदले जाते हैं न! बाधाएँ नियमों को निगल लें, इतने बौने और बेचारे तो नहीं ही होते नियम। ...या कहीं ऐसा तो नहीं कि बार-बार एक ही फरियाद पढ़ कर आप झल्ला गई हों और सोचती हों, जान न पहचान, यह लड़की मेरे गले क्यों पड़ रही है? सचमुच गले ही पड़ रही हूँ। लेकिन इसके अलावा और करूँ भी क्या? इतनी बड़ी महिला संस्था की अध्यक्ष हैं आप। आपके अतिरिक्त किसी और के आगे हाथ फैलाना भी नहीं चाहती। जानती हूँ, जिस किसी भी स्थानीय परिचित के आगे हाथ फैलाऊँगी, वह मदद करे न करे, तुरंत माँ और सबको राई-रत्ती बात देगा। फिर तो मेरे लिए सारे रास्ते सीलबंद हो जाएँगे और मैं ताबूत के अंदर। दूसरे, मुझे लगता है (हो सकता है कच्ची उम्र और भावुक नजर होने के कारण मैं गलत होऊँ), बराबरी के तल पर कोई किसी की मदद नहीं करता। कुछ देने के एवज में उसके आत्मसम्मान और अहं को गिरवी पहले रख लेना चाहता है। मेरी कुल संपत्ति ही यही है। यही न रही तो लंबी जद्दोजहद के लिए ताकत कहाँ से पाऊँगी?

समझ रही हैं न आप**?**

प्रिंसिपल के नाम बैंक ड्राफ्ट की इंतजार में,

अभागन

नयनतारा

21.8.2001

माननीय महोदया,

दाखिले की तारीख निकल चुकी है। लेट फीस के साथ अभी दस दिन बाकी हैं। 31 अगस्त तक। मुझे उम्मीद है आप जरूर मदद करेंगी।

माँ ने लड़का ढूँढ़ लिया है। इकतीस बरस का विधुर। एक लड़का भी है। पाँच बरस का। पहले किसी बेकरी में काम करता था। आजकल खाली है। वह हमारी दुकान चलाएगा। भट्ठी और साँचे ला कर बिस्कुट-ब्रेड भी तैयार करेगा। माँ उसे घर जमाई बनाने को तैयार है। मेरी राय पूछी नहीं गई। सारा शहर जानता है मेरे साथ उस चिलचिलाती दोपहर को मास्टर और उसके दोस्त ने क्या किया। लानत-मलामत के बावजूद वह लड़का मुझे अपनाने को तैयार है। माँ उसके पैर पूजने की बात करती है। शादी की साइत जल्दी निकलवाने की बात भी चल रही है।

कृपा करके आप चिट्ठी मिलते ही फौरन छह हजार रुपयों का बैंक ड्राफ्ट प्रिंसिपल के नाम भिजवा दें। मैं जीना चाहती हूँ। अपने पैरों पर खड़े हो कर। यदि आप ही मुझ जैसी अभागनं की मदद को नहीं आएँगी तो कौन हमें जीने देगा? मैं वादा करती हूँ रकम चुकाने के बाद भी मैं उम्र भर आपकी बाँदी बनी रहूँगी।

प्लीज! मुझे नर्क में न धकेलिए। सिर्फ आप ही मेरा उद्धार कर सकती हैं।

अभागन

नयनतारा

27.8.2001

माननीय महोदया,

लेट फीस के साथ एडमिशन लेने में कुल चार दिन रह गए हैं। अब भी मैंने उम्मीद नहीं छोड़ी। खुदा के घर देर है, अंधेर नहीं। वह मुझ-सी बेकसूर लड़कियों के साथ भला क्यों सितम ढाएगा जबकि मैं तो पढ़-लिख कर जिंदगी सँवारने का सपना ले कर चल रही हूँ। मुझे दूसरी लड़कियों की तरह बनने-सँवरने, बिना बात ही ही-खी खी करने, लड़कों को 'लाइन' मारने का शौक भी नहीं है जैसा कि मुझे लगता है आप हमारे जैसी लड़कियों को ले कर शायद सोचती होंगी। मैं बेहद शरीफ और सोबर लड़की हूँ। चाहें तो खुद आ कर पूरी छानबीन कर सकती हैं। कानूनी तौर पर पैसा लौटाने की सारी लिखा-पढ़त होगी, इसलिए मैं बेईमानी भी नहीं कर सकूँगी। आप मुझ पर यकीन तो करिए।

मेरा मंगेतर कहता है मैं ब्यूटीशियन का कोर्स सीख कर घर में ही ब्यूटी पार्लर खोल लूँ। उसी कमरे में जिसे पप्पा ने मेरी पढ़ाई के लिए बनवाया था। माँ उसकी हर बात में हाँ-हाँ करती है। मेरी पसंद-नापसंद का कोई मूल्य नहीं।

क्या आपको भी लगता है, मुझ जैसी लड़कियों को तवज्जोह नहीं दी जानी चाहिए? क्या वाकई मैं ही कसूरवार हूँ? क्या पढ़ना और जीना मेरा मौलिक अधिकार नहीं?

अभागन

नयनतारा

.

15.9.2001

माननीय महोदया,

सारी अंतिम तिथियाँ एक-एक कर निकल गईं। आर्थिक सहायता कर पाना शायद आपकी संस्था के नियमों में नहीं। ...और नियमों में आवश्यकतानुसार संशोधन करने का नियम भी। कोई बात नहीं। दुखी मत होइए। आप सिर्फ एक बार आ कर माँ को समझा जाइए। हौसला और आत्मविश्वास खो कर पस्त हो बैठी है वह दिलेर औरत। माँ बहुत संवेदनशील है और समझदार भी। अगर वह मँगनी तोड़ देने पर राजी हो गई

तो भी आपका कितना बड़ा उपकार होगा मुझ पर, मैं बयान नहीं कर सकती। मुझे खड़ा भर रहने के लिए दो डग जमीन चाहिए और सर पर आसमान तक फैली छत। मैं अपना भविष्य अपने आप बुन लूँगी। बस, ब्याह के मंत्र रुकवा दीजिए। वे जमीन और छत लील लेते हैं।

आएँगी न?

चिर अभागन

नयनतारा

पुनश्च : मेरे ब्याह की तारीख तय हो गई है। 15 अक्तूबर। दशहरे के दिन। आप आ रही हैं न माँ को समझाने? जल्द से जल्द। ज्यादा क्या कहूँ, जिंदगी और मौत का सवाल है।

नयनतारा

.

निमंत्रण-पत्र

कु. नयनतारा

(सुपुत्री स्व. श्री रतनलाल एवं मेवा देवी)

एवं

मोहन लाल

(सुपुत्र श्री खुशी राम एवं अंगूरी देवी)

के शुभविवाह पर आप दिनांक **15** अक्तूबर **2001** को सायं आठ बजे उनके निवास **112** हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी में सादर आमंत्रित हैं। कृपया वर-वधू को आशीर्वाद दे कर उनके विवाहित जीवन की मंगलकामनाएं करें।

दर्शनाभिलाषी विनीता

दोनों परिवारों के समस्त सदस्य मेवा देवी